[2013] 12 एस. सी. आर. 205

मनीष त्रिवेदी

बनाम

राजस्थान राज्य

आपराधिक अपील संख्या 1881 सन 2013

29 अक्तूबर 2013

(चन्द्रमौली कुमार प्रसाद और जगदीश सिंह खेहर, जे जे.)

राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959:

धारा 87 राजस्थान नगरपालिका अधिनियम सपठित धारा 21 भा. द. वि. और धारा 2(c) (viii) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम – 'लोक सेवक' - अपीलार्थी, एक नगर पार्षद और नगर निगम बोर्ड के सदस्य - अवधारित: राजस्थान नगरपालिका अधिनियम की धारा 87 के द्वारा विधान मंडल ने एक ऐसी कल्पना की हैं की नगर पालिका बोर्ड के हर सदस्य भा.द.वि. की धारा 21 के अन्तर्गत एक 'लोक सेवक' हैं, भा.द.वि. - दंड संहिता, 1860 - धारा 21 -- भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 -- धारा 2(c) (viii)

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988:

धारा 2(c) (viii) – 'लोक सेवक' – अवधारित : अधिनियम 'लोक सेवक' अभिव्यक्ति की परिभाषा का दायरा विस्तृत करने की परिकल्पना करता है, -- इसे लोक प्रशासन को शुद्ध करने के प्रभाव में लाया गया था। -- विधायिका ने लोक सेवक की एक व्यापक परिभाषा का उपयोग लोक सेवकों को दंडित करने एवं उनमें व्याप्त भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए किया है। इस लिए परिभाषा खंड के अंतर्वस्तु कि ऐसी व्याख्या द्वारा सीमित करना अनुचित होगा जो संविधि की आत्मा के विरूद्ध किया गया हो-- संविधि का निर्वचन।

धारा 2(c) (viii) – 'लोक सेवक' - अपीलार्थी एक नगरपालिका पार्षद और नगरपालिका बोर्ड का सदस्य – अवधारित : धारा 2(c) के अर्थ के अन्तर्गत एक लोक सेवक हैं-- धारा 2(c) का खंड (viii) किसी भी व्यक्ति को लोक सेवक बनाता है, जो एक पद धारण करता है जिस के आधार पर वह किसी भी सार्वजनिक कर्तव्य का निर्वहन करने के लिए अधिकृत या आवश्यक

है, – 'कार्यालय' शब्द के संदर्भ में इस का अर्थ एक पद या स्थान होगा जिस से कुछ कर्तव्य जुड़े हैं और इस का अपना अस्तित्व इसे भरने वाले व्यक्तियों से स्वतंत्र हैं-- राजस्थान नगरपालिका अधिनियम के अंर्तगत पार्षद एवं नगरपालिका बोर्ड के सदस्य पद हैं -- वे विभिन्न दायित्वों का निर्वहन करते हैं जो सार्वजनिक कर्तव्य के क्षेत्र में हैं-- राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959 -- धारा 87 -- दंड संहिता, 1860 - धारा 21 |

संविधियों का निर्वचन:

विधिक कल्पना – अवधारित : विधायिका एक विधिक कल्पना का सृजन करने के सक्षम हैं -- एक डीमिंग प्रावधान को अधिनियमित इस उद्देश्य से किया जाता है कि यह मान लिया जाये कि एक तथ्य का अस्तित्व हैं जो वास्तव में मौजूद नहीं हैं -- जब विधायिका एक विधिक कल्पना सृजित करती हैं तो न्यायालय को निर्धारित करना पड़ता हैं की यह कल्पना किस उद्देश्य से सृजित की गई हैं और यह सुनिश्चित करने के पश्चात, उन सभी तथ्य एवं परिणामों को मान लिया जाता है, जो इस कल्पना को प्रभाव देने के लिए आकस्मिक या अपरिहार्य परिणाम है -- राजस्थान नगरपालिका की धारा 87 को अधिनियमित करने के क्रम में विधायिका ने एक विधिक कल्पना इस उद्देश्य से सृजित किया ताकि यह माना जाये कि जो सदस्य भा. द. वि. धारा 21 के अर्थ के अन्यथा लोक सेवक नहीं हो सकते हैं किन्तु इस प्रकार से सृजित विधिक कल्पना के अंतर्गत माने जाएंगे -- राजस्थान नगर पालिका अधिनियम, 1959 - धारा 87 -- दंड संहिता, 1860 -- धारा 21 ।

शब्द और वाक्यांश:

'कार्यालय' - का अर्थ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988.

अपीलार्थी के विरूद्ध धारा **7** और **13 (1)(d)** सपठित धारा **13(2)** भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, **1988** के अपराधों के अन्तर्गत आरोप - पत्र का दायर किया गया था, जो सुसंगत समय पर नगरपालिका पार्षद और नगरपालिका बोर्ड का सदस्य था। विचारण के दौरान, अपीलार्थी ने कार्यवाही को समाप्त करने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष , अन्य बातों के साथ, यह तर्क देते हुए एक आवेदन दाखिल किया कि वह पार्षद होने के नाते 'लोक सेवक' की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आता है और इसप्रकार, उसपर आरोपित अपराध के लिए मुकदमा नहीं चलाया जा सकता हैं। विचारण न्यायालय ने प्रार्थना खारिज कर दिया। उच्च न्यायालय ने भी दंड प्रक्रिया संहिता , **1973** की धारा **482** के अंतर्गत उसकी याचिका खारिज कर दी।

अपील को खारिज करते हुए न्यायालय ने

अवधारित किया: **1.1** बेशक, अपीलार्थी एक निवार्चित पार्षद और निगम बोर्ड का एक सदस्य है अधिनियम की धारा **87** प्रत्येक सदस्य को भा. द. वि. की धारा **21** के अन्तर्गत लोक सेवक बनाता है। राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, **1959** की धारा **87** को अधिनियमित करने के क्रम में विधायिका ने एक विधिक कल्पना इस उद्देश्य से सृजित की ताकि सभी सदस्य, जो अन्यथा, दंड विधान की धारा **21** के अर्थ के अन्तर्गत लोक सेवक नहीं होते हैं उनको भी इस प्रकार से सृजित विधिक कल्पना के आलोक में लोक सेवक माना जाएगा। इसलिए इस निष्कर्ष से बचा नहीं जा सकता हैं कि अपीलार्थी दंड विधान की धारा **21** में लोक सेवक के अर्थ के अन्तर्गत आता है। [पारा **14** और **15**] **[215-D, H, 216-A, C-D]**

1.2 विधिक कल्पना सृजित करने के लिए विधायिका सक्षम है। एक डीमिंग प्रावधान अधिनियमित इस उद्देश्य से किया जाता है कि यह मान लिया जाये एक तथ्य का अस्तित्व हैं जो वास्तविकता में अस्तित्व में नहीं होता है। जब विधायिका एक विधिक कल्पना का सृजन करती है तो न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करना पड़ता हैं कि इस कल्पना का सृजन किस उद्देश्य से किया गया है, और इसे सुनिश्चित करने के पश्चात उन सभी तथ्यों एवं परिणामों को मान लिया जाता है जो इस कल्पना को प्रभाव देने के लिए आकस्मिक या अपरिहार्य परिणाम होते हैं। [पारा **15] [216-A-C]**

1.3 राजस्थान नगरपालिका अधिनियम की योजना के अन्तर्गत यह प्रत्यक्ष है कि अपीलार्थी एक पार्षद और बोर्ड का एक सदस्य हुआ करता था। पुनः धारा **87** की भाषा की दृष्टिकोण से, वह भा.द.वि. की धारा **21** के अर्थ के अन्तर्गत एक लोक सेवक है। 'लोक सेवक' को भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम, **1988** की धारा **2(c)** के अन्तर्गत परिभाषित किया गया हैं, जो इस प्रस्तुत वाद में प्रासंगिक है। इस अधिनियम के अन्तर्गत अभियोग मात्र उन व्यक्तियों पर हो सकता है जो इस के अन्तर्गत लोक सेवक की परिभाषा में आते है, अपीलार्थी के विरूद्ध अभियोग भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम, **1988** के तहत किया गया हैं , अतः उसकी स्थिति का निर्धारण करने हेतु यह ध्यान रखना आवश्यक होगा की इसमें धारा **2 (c)** की व्याख्या राजस्थान नगरपालिका अधिनियम के प्रावधानों के साथ पढ़ते हुए कि जाये। **[**पारा **17] [216-F-G, 217-A-C]**

महाराष्ट्र राज्य बनाम प्रभाकरराव, **(2002) 7 SCC 636 -** विश्वास किया गया।

1.4 अधिनियम, **1988** 'लोक सेवक' की परिभाषा के दायरे को बढ़ाने की परिकल्पना करता है। इसे लोक प्रशासन को सही करने के लिए प्रभाव में लाया गया था। विधायिका ने लोक सेवक की व्यापक परिभाषा का प्रयोग लोक सेवकों को दंडित करने एवं उनमें व्याप्त भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किया है। अतः एक ऐसी व्याख्या

के द्वारा इस परिभाषा खंड के अव्ययों को सीमित करना अनुपयुक्त होगा जो संविधि की आत्मा के विरूद्ध होगी। इस सिंद्वात को ध्यान में रखते हुए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि अपीलार्थी अधिनियम की धारा **2 (c)** के अन्तर्गत एक लोक सेवक है। धारा **2 (c)** का खंड **(viii)** किसी भी व्यक्ति को एक लोक सेवक बनाता है, जो एक कार्यालय धारण करने के कारण किसी लोक कर्तव्य का पालन करने के लिए अधिकृत या अपेक्षित है। 'कार्यालय' शब्द एक अनिश्चित अर्थ का है और इस प्रस्तुत संदर्भ में इसका तात्पर्य एक पद या स्थान होगा जिस से कुछ निश्चित कर्तव्य जुडे हुए होते है और इसका एक अस्तित्व है जो इसे भरने वाले व्यक्तियों से स्वतंत्र है। पार्षद और बोर्ड के सदस्य पद है जो राजस्थान नगरपालिका के अन्तर्गत मौजूद है। यह उन व्यक्ति से स्वतंत्र है जो इसे धारण करते है। वे सभी भिन्न दायित्वों का निर्वहन करते है जो लोक कर्तव्य के क्षेत्र में है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम, **1988** की धारा **2 (c) (viii)** के अन्तर्गत एक लोक सेवक है। **[**पारा **19] [219-H, 220-A-E]**

1.5 का एक सदस्य या उस बात के लिए एक पार्षद स्वतः दंड संहिता की धारा **21** के अन्तर्गत परिभाषित लोक सेवक की परिभाषा में नहीं आ सकते है लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उन्हें किसी अन्य अधिनियम के द्वारा लोक सेवक की श्रेणी में नहीं लाया जा सकता है। राजस्थान नगरपालिका की धारा **87,** पार्षद एवं बोर्ड के सदस्य को दंड विधान की धारा **21** में लोक सेवक के अर्थ के अन्तर्गत लाती है। इस प्रस्तुत वाद के इतर, लोक सेवक अभिव्यक्ति का अर्थ जैसा कि भ्रष्टाचार निरोधक की धारा **2 (c)** में परिभाषित महत्वपूर्ण है**|** अतः इस प्रकार दंड विधान की धारा **21** के निर्वचन के क्रम में इस न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णयों, जो सारभूत एवं अव्ययों के रूप में भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम की धारा **2 (c)** से भिन्न है का प्रभाव किसी भी प्रकार से प्रस्तुत वाद में पारित निर्णय पर नहीं होगा। **[**पारा **20** और **22] [220-G-H, 221-A, F-G]**

आर. एस नायक बनाम ए. आर. अंतुले **1984 (2) SCR 495 = (1984) 2 SCC 183,** *रमेश बालकृष्ण कुलकर्णी बनाम महाराष्ट्र राज्य,* **1985 (2) Suppl. 345 = (1985) 3 SCC 606;** *तमिलनाडु राज्य बनाम टी. थूलसिंगम,* **1994 Supp (2) 405** --अयोग्य अवधारित किया गया।

1.6 सुमित्रा कानथिया के मामले में राजस्थान हाई कोर्ट के एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय के संबंध में राजस्थान नगरपालिका अधिनियम की धारा **87** का विचार नहीं किया गया है। इस एकल जज की पीठ ने राजस्थान नगरपालिका अधिनियम की धारा **87** और भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम, **1988** की धारा **2 (c)** का उल्लेख बिलकुल नहीं किया है और इसीलिए, राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा सुमित्रा कानथिया के मामले में पारित निर्णय विधि

को सही ढ़ग से निर्धारित नहीं करता है और इसलिए यह खारिज किया जाता है। **[पारा 22] [221-G-H, 222-C-D]**

दिनांक **30.07.2008** को राजस्थान हाई कोर्ट द्वारा निष्पादित वाद *श्रीमति सुमित्रा कानथिया बनाम राजस्थान राज्य* - खारिज किया गया।

निर्णीत विधि सदर्भ

1984 (2) SCR 495	अनुपयुक्त अवधारित	पारा **8**
1985 (2) Suppl. SCR 345	अनुपयुक्त अवधारित	पारा **9**
1994 Suppl (2) SCC 405	अनुपयुक्त अवधारित	पारा **10**
(2002) 7 SCC 636	भरोसा किया	पारा **17**

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 1881 वर्ष 2013।

राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर पीठ के द्वारा आपराधिक विविध वाद संख्या 1686 वर्ष 2009 में पारित निर्णय तथा आदेश दिनांक 01.03.2013 से।

याशांक अदियारू, आरथी वंशल, अजय दिगपाल, एन. अन्नपूर्णी अपीलार्थी के ओर से

मिलिंद कुमार प्रतिवादी की ओर से |

इस न्यायालय का फैसला न्यायमूर्ति चंद्रमौली कुमार प्रसाद के द्वारा सुनाया गया, 1. याचिकाकर्ता के द्वारा अपने उपर भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम की धारा 7, धारा 13 (1) (D) सपठित धारा 13 (2) के अपराध के अभियोजन की चुनौती को विचारण न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया और कथित आदेश को उच्च न्यायालय ने वर्ष 2009 के आपराधिक विविध वाद संख्या 1686 में पारित आदेश दिनांक 01.03.2013 के द्वारा पुष्टि कर दिया | इसी आदेश के विरूद्ध याचिका कर्ता ने यह विशेष अनुमति याचिका दाखिल किया है।

2. विलम्ब क्षमा किया गया।

3. अनुमति दी गई।

4. अनावश्यक विवरणों को दरकिनार करते हुए वे तथ्य जो प्रस्तुत अपील की उत्पति करते है वह यह है कि अपीलार्थी प्रासंगिक समय पर बासवारा नगरपालिका परिषद का एक निर्वाचित पार्षद तथा नगरपालिका बोर्ड का एक सदस्य था। अभियोजन पक्ष के अनुसार प्रभु

लाल मोची नामक व्यक्ति ने भ्रष्टाचार विरोधी ब्यूरो में एक रिपोर्ट, अन्य बातों के साथ-साथ, यह आरोप लगाते दर्ज कराया कि उसकी एक जूता मरम्मत करने की दुकान वन विभाग, बासवारा के द्वार के नजदीक थी और नगरपालिका परिषद के कर्मचारियों ने वर्ष 2000 में उस की केबिन जब्त कर ली जिससे वह बेरोजगार हो गया। आरोप के अनुसार उसने नगर परिषद के समक्ष किओस्क के आवंटन हेतु आवेदन किया था किन्तु सफल नहीं हुआ। पूछताछ करने पर सूचक को यह बताया गया की यह अपीलकर्ता ही है जो आवंटन को उसके पक्ष में करवा सकता है और तदनुसार उसने अपीलकर्ता से समर्पक किया । ऐसा आरोप है कि अपीलकर्ता ने उस के नाम पर आवंटन प्राप्त करने हेतु कुल रुपये 50,000 की माँग की और अंततः यह सहमति बनी की सुचक अपीलार्थी को प्रारंभिक तौर पर रुपये 5,000 देगा और शेष राशि उसके बाद। अभियोजन पक्ष के अनुसार उपरोक्त कथित सूचना के आधार पर एक जाल बिछा कर अपीलार्थी को रंगे हाथ पकड़ा गया उसके पास से रुपये 5,000 बरामद किया गया।

5. साधारण जाँच के पश्चात, अपीलार्थी के विरूद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया और उसे विचारण हेतु रखा गया। विचारण के दौरान गवाहों में से एक गवाह का साक्ष्य दर्ज किया गया और उस के बाद अपीलार्थी के द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष एक आवेदक इस कारवाही को समाप्त करने हेतु दाखिल किया गया तथा अन्य तथ्य के साथ यह दावा किया गया कि एक पार्षद होने के कारण वह एक लोक सेवक के दायरे में नहीं आता है और इस प्रकार उसे भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम की धारा 7, 13(1)(a) सपठित धारा 13(2) के अपराध के अन्तर्गत विचारण हेतु नहीं रखा जा सकता है। विचारण न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 13.10.2009 के द्वारा कथित आवेदन को खारिज कर दिया। अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत इस आदेश को उच्च न्यायालय में चुनौती तथा उच्च न्यायालय ने अपने इस आक्षेपित निर्णय द्वारा प्रार्थना को खारिज कर दिया।

6. अपीलार्थी हमारे समक्ष इस आदेश के विरूद्ध न्यायालय के अनुमति के साथ उपस्थित है।

7. हमने अपीलार्थी की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री यशांक अधियारू, को सुना जब की प्रतिवादी की ओर से श्री मिलिंद कुमार के द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया।

8. श्री अधियारू प्रार्थना करते हुए कहते है कि एक नगरपालिका पार्षद एक लोक सेवक नहीं है और इसलिए उस का अभियोजन कथित अपराध के लिए किया जाना विधि विरूद्ध है उनके अनुसार भ्रष्टाचार अधिनियम, 1988 के अपराध के अन्तर्गत आरोपित अपराधी को एक लोक सेवक होना आवश्यक है और अपीलार्थी एक लोक सेवक नहीं होने के कारण कथित अधिनियम के अन्तर्गत अभियोजित नहीं किया जा सकता है। पुनः एक व्यक्ति को लोक सेवक

की स्थिति के लिए यह आवश्यक है कि वह सरकार के द्वारा नियुक्त होना चाहिए और उसे सरकार के द्वारा भुगतान या वेतन प्राप्त होना आवश्यक है। इतना ही नहीं, लोक सेवक होने के लिए ऐसे व्यक्ति को सरकार के द्वारा निर्मित द्वारा नियम एवं विनियमों के अनुरूप अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना पड़ता है। उनके अनुसार अपीलार्थी नगरपालिका परिषद के रूप में निर्वाचित था और वह किसी सरकारी के प्राधिकरण के द्वारा अपने नियुक्त के लिए ऋणी नहीं है। जनता के द्वारा चुने हुए व्यक्ति के नाते सरकार के आदेश एवं फरमान उसपर लागू नहीं होते है अपने इस याचना के समर्थन में उन्होंने आर. एस. नायक बनाम ए. आर. अनतुले, (1984) 2 SCC 183 के मामले में इस न्यायालय के द्वारा पारित निर्णय पर अपना विश्वास जताया। उन्होंने हम लोगों का ध्यान कथित निर्णय के निम्नलिखित अंश पर आकृष्ट किया।

"41 ....जो भी हो, यह निष्कर्ष अपरिहार्य है कि वर्ष 1964 तक किसी भी प्रकार से एक विधायक को धारा 21 में 'लोक सेवक' की परिभाषा में शामिल नहीं किया गया था। और संथानन समिति ने इसे धारा 21 में 'लोक सेवक' की परिभाषा में शामिल करने की सिफारिश नहीं की थी।

42 ....अब यदि वर्ष 1964 के अधिनियम के 40 लागू होने से पूर्व विधायक को लोक सेवक के रूप में नहीं समक्षा जाता था, तो अगला प्रश्न यह है की क्या संशोधन से उनकी स्थिति में अंतर आया। खंड (9) का अंतिम भाग खंड (12)(a) के जैसा अधिनियमित किया था। यदि खंड (9) के संशोधन एवं विच्छेदन के पूर्व इस में विधायक सम्मिलित नहीं थे तो खंड (9) के अंश को खंड (12)(a) के रूप में पुनः अधिनियमित करने से विधि के अर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। इसे एक आवश्यक परिणाम के रूप में पालन करना होगा की वर्ष 1964 के संशोधन अधिनियम, 40 के द्वारा खंड (9)(12) में लाया गया संशोधन किसी प्रकार से खंड (9) एवं (12)(a) के निर्वचन में परिवर्तन लाया।

XXX XXX XXX

.............इसलिए, किसी भी बात के अलावा, धारा 21 का ऐतिहासिक विकास, जो वाह्य सहायक के रूप में व्याख्या करने पर कोई भी विश्वास से कह सकता है कि एक विधायक भा. द. वि. की धारा 21 के किसी भी खंड में अभिव्यक्ति के अर्थ के अन्तर्गत एक लोक सेवक न था और न ही है।"

9. इस न्यायालय द्वारा एक अन्य वाद *रमेश बालकृष्ण कुलकर्णी बनाम महाराष्ट्र राज्य*, (1985) 3 SCC 606, में दिये गये निर्णय पर अधिवक्ता ने विश्वास जताया और उन्होंने कथित निर्णय के पारा 5 पर हमारा ध्यान आकृष्ट किया जो निम्न रूप से पढ़ा जाता है:

"5. अतः इस निर्णय के दृष्टि से हमें इस विषय पर अन्य प्रमाण को देखने की आवश्यकता नहीं हैं। फिर भी हम इस राय पर है की एक 'लोक सेवक' की अवधारणा एक नगरपालिका पार्षद से काफी भिन्न है, एक 'लोक सेवक' अधिकारी है जो सरकार या अन्य सरकारी अंग द्वारा नियुक्त होना और भुगतान या वेतन प्राप्त करने वाला होना आवश्यक है। दूसरे तौर पर एक 'लोक सेवक' को सरकार द्वारा बनाये गये नियमों एवं विनियमों के अनुसार अपने दायित्वों का निर्वहन करना होता है। वही दूसरी ओर, एक नगरपालिका पार्षद अपने नियुक्ति के लिए किसी सरकारी प्राधिकार पर आश्रित नहीं होता है। ऐसे व्यक्ति जनता के द्वारा चुने जाते है और सरकारी प्राधिकार के आदेश या आदेशों से प्रभावित हुए बिना कार्य करते है। बस इस तथ्य मात्र से कि एक विधायक को मानदेय के रूप में भत्ता मिलता है, उसकी स्थिति को एक 'लोक सेवक' के रूप में परिवर्तित नहीं करता है। *आर. एस. नायक बनाम ए. आर. अनतुले,* (1984) 2 SCC 189 में संविधान पीठ के न्यायाधीशों ने भा.द.वि. की धा 21 में परिकल्पित एक 'लोक सेवक' की अवधारणा के समग्र इतिहास एवं विकास का उल्लेख किया है।"

10. *तमिलनाडु राज्य बनाम टी. थुलसिंगम,* 1994 Supp (2) SCC में इस न्यायालय द्वारा पारित एक अन्य निर्णय पर अधिवक्ता ने विश्वास जताया और उन्होंने हमारा ध्यान कथित निर्णय के पारा 76 पर आकर्षित किया, जो इस प्रकार है:

"76. हालाँकि *रमेश बालकृष्ण कुलकर्णी बनाम महाराष्ट्र राज्य* (1985) 3 SCC 606 में पारित इस न्यायालय के निर्णय के दृष्टिकोण से उच्च न्यायालय के द्वारा विभिन्न पार्षदों को भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम के आरोपों से दोषमुक्त करना सही था क्योंकि वे लोक सेवक नहीं है। अतः पार्षदों (A-84 to A-86); अध्यक्ष और लेखा समिति के सदस्य (A-84 to A-86); कार्य समिति के सदस्यों (A-87); शिक्षा समिति के सदस्यों (A-94 to A-96); नगर नियोजन के सदस्य (A-98) और पार्षदों (A-102 A-104) का भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत दोषमुक्ति को कायम रखा जाता है। जबकि विचारण न्यायालय द्वारा पाये गये अन्य आरोपों से संबंधित दोषसिद्धि एवं सजा को बरकरार रखा जाता है और अन्य आरोपों के लिए उच्च न्यायालय द्वारा उन्हें बरी करना उचित नहीं था। सभी गणमान्य व्यक्ति स्वयं मद्रास नगर निगम को धोखा देने की आपराधिक साजिश के सरगना बन गये थे।"

11. अपीलार्थी के अधिवक्ता ने *श्रीमती सुमित्रा कानथिया बनाम राजस्थान राज्य,* के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय के द्वारा पारित एक असूचित निर्णय पर भरोसा जताया जो, 30वी जुलाई 2008 को आपराधिक पुनरीक्षण बाद संख्या 453 द्वारा निष्पादित हुआ था। और हमारा ध्यान उक्त निर्णय के निम्नलिखित अंश पर आकृष्ट किया गया:

“माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त फैसले के दृष्टिकोण से याचिका कर्ता नगरपालिका पार्षद होने के नाते लोक सेवक नहीं है और 18 जुलाई 2007 सुनवाई का अवसर दिये बिना उनके खिलाफ गठित आरोप चल नहीं सकता है, खासकर जब राज्य ने अभियोजन के लिए मंजूरी देने से इनकार दिया हो और भ्रष्टाचार निरोधक विभाग ने अपनी अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की किन्तु विद्वान न्यायाधीश ने उपरोक्त कानूनी पहलुओं को नजरंदाज करते हुए संज्ञान ले लिया। “

12. हालाँकि, राजस्थान राज्य प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मिलिंद कुमार प्रार्थना करते है कि नगरपालिका के पार्षद और बोर्ड का सदस्य होने के नाते यह अपीलार्थी लोक सेवक की परिभाषा के अंतर्गत आता है और इसलिए, वह भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत दंडनीय अपराध के लिए अभियोजन से बच नहीं सकते है।

13. हम सभी ने प्रतिदंद्वी के प्रस्तुतीकरण पर अपना ध्यान दिया है और हमें श्री यशांक अधियारू के प्रस्तुतीकरण में काई सार नहीं मिला और जिन प्रमाणों पर भरोसा किया गया है वे स्पष्ट रूप से भिन्न है।

14. जैसा की पूर्व में कहा गया है, यह एक स्वीकृत स्थिति है कि अपीलार्थी एक निर्वाचित पार्षद और नगरपालिका बोर्ड का सदस्य हुआ करता था। अधिनियम की धारा 3 (2) बोर्ड को परिभाषित करती है। धारा 7 इसकी स्थापना और निगमन का प्रावधान करती है तथा धारा 9 इस की संरचना के बारे में प्रावधान करती है। धारा 3 (15) ‘सदस्य’ को परिभाषित करती है जिसका अभिप्राय वह व्यक्ति है जो विधिक रूप से बोर्ड का सदस्य है। राजस्थान नगरपालिका अधिनियम 1959 की धारा 87 प्रत्येक सदस्य को भारतीय दंड संहिता 21 के अर्थ में बनाती है और इसे इस प्रकार पढ़ा जाता है:

“87. सदस्यों आदि को लोक सेवक माना जाएगा - (1) प्रत्येक सदस्य, अधिकारी या सेवक, और किसी भी नगरपालिका कर के उदग्रहण के प्रत्येक पट्टेदार, और ऐसे किसी भी पट्टेदार के प्रत्येक सेवक या अन्य कर्मचारी को भारतीय दंड विधान संहिता 1860 (1860 का केन्द्रीय अधिनियम XLV) की धारा 21 के अर्थ के अन्तर्गत लोक सेवक माना जाएगा।

(2) इस संहिता की धारा 161 में “कानूनी पारिश्रमिक” की परिभाषा में “सरकार” शब्द, इस धारा की उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए नगरपालिका बोर्ड को उसमें शामिल माना जाएगा।“

15. उपरोक्त प्रावधानों को साधारण तौर पर पढ़ने पर यह प्रत्यक्ष है कि विधायिका ने एक कल्पना सृजित कि है ताकि सभी सदस्यों को भा.द.वि. की धारा 21 के अर्थ के अन्तर्गत

एक लोक सेवक माना जाए। यह सर्व विदित है कि विधायिका एक विधिक कल्पना का सृजन करने के सक्षम है। एक डीमिंग प्रावधान का अधिनियमन इस उदेश्य से किया जाता है कि एक तथ्य के अस्तित्व को मान लिया जाये जिसका अस्तित्व वास्तव में नहीं है। जब विधायिका एक विधिक कल्पना का सृजन करती है, तो न्यायालय को यह सुनिश्चित करना होता है कि यह कल्पना किस उदेश्य से सृजित की गई है और यह सुनिश्चित करने के पश्चात, उन सभी तथ्यों और परिणामों को मान लिया जाता है जो इस कल्पना को प्रभावी बनाने के लिए आकस्मिक या अपरिहार्य परिणाम होते हैं। हमारी राय में, विधायिका ने धारा 87 को अधिनियमित करते समय, यह मानने के उदेश्य से एक विधिक कल्पना रची है कि जो सदस्य अन्यथा भारतीय दंड संहिता की धारा 21 के अर्थ में एक लोक सेवक नहीं हो सकते हैं लेकिन इस सृजित विधिक कल्पना के दृष्टि से लोक सेवक माने जाएंगे। उपरोक्त कथन को देखते हुए इस निष्कर्ष से बचना सम्भव नहीं है की अपीलकर्ता भारतीय दंड संहिता की धारा 21 के अंतर्गत एक लोक सेवक हैं।

16. अभिलेख को ठीक से रखने के लिए, हमें श्री अधियारू की सहायक प्रस्तुति को शामिल करना चाहिए। उनका कहना है कि धारा 87 में प्रयुक्त 'प्रत्येक सदस्य' ऐसे सदस्यों से संबंधित है जो किसी भी 'नगरपालिका कर लगाने वाले पट्टेदार' से जुड़े है। इनके इस प्रार्थना को केवल अस्वीकार्य करने मात्र के लिए नोट किया गया है। धारा 87 में अभिव्यक्ति 'प्रत्येक सदस्य' स्वतंत्र हैं और बाद वाले हिस्से द्वारा बिल्कुल भी नियंत्रित नहीं है तथा इस धारा की स्पष्ट भाषा को देखते हुए, किसी अन्य विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

17. राजस्थान नगरपालिका की योजना के तहत यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता एक पार्षद तथा बोर्ड का सदस्य हुआ करता था। इसके अलावा राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, की धारा 87 की भाषा की दृष्टि से वह भारतीय दंड संहिता की धारा 21 के अर्थ के अन्तर्गत एक लोक सेवक है। यदि यह भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 के तहत अभियोजन का मामला होता तो यह मामला यही समाप्त हो गया होता। इस अधिनियम की धारा 2 में परिभाषित 'लोक सेवक' का अर्थ भारतीय दंड संहिता की धारा 21 में परिभाषित लोक सेवक के जैसा ही है। जबकि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम लोक सेवक शब्द को धारा 2(ब) में परिभाषित किया गया है जो इस वर्तमान अपील में हमारे समक्ष सम्बध है। हमारी राय में, इस अधिनियम के तहत अभियोजन केवल ऐसे व्यक्तियों पर ही हो सकता है, जो इसमें लोक सेवक की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 और भारतीय दंड संहिता की धारा 21 के तहत लोक सेवक की परिभाषा का यहाँ कोई महत्व नहीं है। अपीलकर्ता पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत मुकदमा चलाने की माँग की गई हैं और इसलिए उस कि स्थिति निर्धारण हेतु इसी की धारा 2(ब) के अन्तर्गत इस की व्याख्या को देखना आवश्यक होगा तथा

इसे राजस्थान नगरपालिका के प्रावधानों के साथ पढ़ा जाएगा। जो विचार हमने रखे हैं उसका समर्थन इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय महाराष्ट्र राज्य बनाम प्रभाकर राव, (2002) 7 SCCR 636 से प्राप्त हैं, जिसमें इस प्रकार अवधारित किया गया है कि:

"5. दुर्भाग्य से, उच्च न्यायालय ने अपने आदेश में इस प्रश्न पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया है। न्यायालय इस धारणा पर आगे बढ़ा है कि क्या आरोपी लोक सेवक हैं या नहीं के प्रश्न के निर्धारण के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 21 के प्रावधान सुसंगत हैं। जैसा की पूर्व में उल्लेख किया गया हैं, धारा 21 भा. द. वि. इस प्रश्न पर विचार करने के लिए प्रासंगिक नहीं है इसका निर्वचन भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम, की धारा 2(ब) के प्रावधान सपठित धारा महाराष्ट्र सहकारी समिति अधिनियम, 1960 के सुसंगत प्रावधानों के साथ की जानी चाहिए।

18. अब हम इस बात पर विचार करने के लिए आगे बढ़ते है कि अपीलकर्ता जो की एक पार्षद और बोर्ड का सदस्य हैं, क्या वह भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 2(ब) के अन्तर्गत एक लोक सेवक हैं या नहीं। इस अधिनियम की धारा 2(ब) को निम्नलिखित अनुसार पढ़ा जाता हैं:

"2. परिभाषाऐ - इस अधिनियम में, जब तक की संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, -

(a) xxx xxx xxx

(b) xxx xxx xxx

(c) 'लोक सेवक' का अर्थ है -

(i) कोई भी व्यक्ति जो सरकार की सेवा में हैं या वेतन पाता हैं या किसी सार्वजनिक कर्तव्य के लिए सरकार द्वारा फीस या कमीशन द्वारा पारिश्रमकी प्राप्त करता है;

(ii) कोई भी व्यक्ति जो स्थानीय प्राधिकार की सेवा में या वेतन पर होता है;

(iii) कोई भी व्यक्ति, जो केन्द्र, प्रान्तीय या राज्य द्वारा या उसके तहत स्थापित या सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण या सहायता प्राप्त एक प्राधिकरण या निकाय या कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 617 में परिभाषित एक सरकारी कंपनी में सेवा या वेतन प्राप्त करता है;

(iv) कोई न्यायाधीश, जिसमें कानून द्वारा सशक्त कोई भी व्यक्ति चाहे वे स्वयं या व्यक्तियों के किसी निकाय के सदस्य के रूप में, किसी भी न्यायिक कार्य का निर्वहन कर सके;

(v) न्याय के प्रशासन के संबंध में किसी भी कार्य को पूरा करने के लिए न्याय की अदालत द्वारा अधिकृत कोई भी व्यक्ति, जिस में न्यायालय द्वारा नियुक्ति परिसमापक, रिसीवर, आयुक्त शामिल है;

(vi) कोई भी मध्यस्थ या अन्य व्यक्ति जिसे किसी न्यायालय या सक्षम सार्वजनिक प्राधिकारी द्वारा निर्णय या रिपोर्ट के लिए कोई कारण या मामला भेजा गया हो;

(vii) कोई भी व्यक्ति जो ऐसा पद धारण करता हैं जिस के आधार पर उसे मतदाता सूची तैयार करने, प्रकाशित करने, बनाये रखने या संशोधित करने का या चुनाव आयोजित कराने का अधिकार है;

(viii) कोई भी व्यक्ति जो कोई ऐसा पद धारण करता है जिस के आधार पर वह सार्वजनिक कर्तव्य को निभाने के लिए अधिकृत या अपेक्षित है;

(ix) कोई भी व्यक्ति जो कृषि, उधोग, व्यापार या बैंकिंग में लगी किसी पंजीकृत सहकारी समिति का अध्यक्ष, सचिव या अन्य पदाधिकारी हैं, जो केन्द्र सरकार या राज्य सरकार से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रहा है। केन्द्रीय, प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके तहत स्थापित कोई निगम, या सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण या सहायता प्राप्त कोई प्राधिकरण या निकाय या कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 617 में परिभाषित सरकारी कंपनी;

(x) कोई भी व्यक्ति जो किसी सेवा आयोग या बोर्ड का अध्यक्ष, सदस्य या कर्मचारी है, चाहे वह किसी भी नाम से जाना जाता हो, या किसी परीक्षा के संचालन या उस की ओर से चयन करने के ऐसे आयोग या बोर्ड द्वारा नियुक्त ऐसे आयोग या बोर्ड के चयन समिति का सदस्य हो;

(xi) कोई भी व्यक्ति जो किसी विश्वविधालय का कुलपति या किसी शासी निकाय का सदस्य, प्रोफेसर, रीडर, व्याख्याता या कोई अन्य शिक्षक या कर्मचारी है, चाहे वह किसी भी पदनाम से जाना जाता हो और कोई भी व्यक्ति जिसकी सेवाओं का लाभ किसी विश्वविधालय द्वारा लिया गया हो। या परीक्षा आयोजित करने या संचालित करने के संबंध में कोई अन्य सार्वजनिक प्राधिकरण;

(xii) कोई भी व्यक्ति जो किसी शैक्षिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या अन्य संस्थान का पदाधिकारी या कर्मचारी है, चाहे वह किसी भी तरीके से स्थापित हो, केन्द्र सरकार या किसी राज्य सरकार या स्थानीय से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त करता हो या कर रहा हो;

स्पष्टीकरण 1- उपरोक्त धाराओं में से किसी के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति लोक सेवक हैं, चाहे सरकार द्वारा नियुक्ति किया गया हो या नहीं।

स्पष्टीकरण 2- जहां कही भी लोक सेवक शब्द आता है, उस का अर्थ प्रत्येक ऐसे व्यक्ति से समझा जाएगा जिसके पास लोक सेवक की स्थिति का वास्तविक अधिकार है, चाहे उस स्थिति को धारण करने के लिए उस के अधिकार में कोई भी विधिक दोष हो।"

19. वर्तमान अधिनियम में लोक सेवक अभिव्यक्ति की परिभाषा के दायरे को बढाने की परिकल्पना की गई है। इसे सार्वजनिक प्रशासन को शुद्ध करने के लिए लागू किया गया था। विधायिका ने लोक सेवकों की बीच भ्रष्टाचार को रोकने ओर उन्हें दंडित करने के उदेश्य को प्राप्त करने के लिए लोक सेवक की व्यापक परिभाषा का उपयोग किया। इसलिए परिभाषा खंड के अवयवों को एक व्याख्या द्वारा सीमित करना अनुचित होगा जो संविधि की भावना के विरूद्ध होगा। इस िसंद्वात को ध्यान में रखते हुए, जब हम अपीलकर्ता के मामले पर विचार करते है तो कोई संदेह नहीं है की वह इस अधिनियम की धारा 2(c) के अर्थ के अंतर्गत एक लोक सेवक हैं। वर्तमान अधिनियम की धारा 2(c) की उपधारा (viii) किसी भी व्यक्ति को लोक सेवक बताता हैं, जो कोई ऐसा पद धारण करता है जिसके आधार पर वह किसी सार्वजनिक कर्तव्य को निभाने के लिए अधिकृत या अपेक्षित है,। 'कार्यालय' शब्द का अर्थ अनिश्चित हैं और, वर्तमान संदर्भ में, इस का तात्पर्य एक पद या स्थान होगा जिस के साथ कुछ कर्तव्य जुडे हुए हैं और इस का अस्तित्व इसे भरने वाले व्यक्तियों से स्वतंत्र हैं। पार्षद और बोर्ड के सदस्य ऐसे पद है जो राजस्थान नगरपालिका अधिनियम के तहत मौजूद हैं। और यह इसे भरने वाले व्यक्ति से स्वतंत्र हैं। ये सार्वजनिक कर्तव्य के क्षेत्र में विभिन्न दायित्व का निर्वहन करते है। उपर जो हमने अवलोकन किया है उस परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 2(ब)(viii) के अन्तर्गत एक लोक सेवक है।

20. अब हम श्री अधियारू के द्वारा भरोसा किये गये निर्णयों की ओर यानी आर. एस. नायक (सुप्रा), रमेश बालकृष्ण कुलकर्णी (सुप्रा), और टी. थुलासिंगम (सुप्रा) की ओर लौटते है। इन सभी निर्णयों में यह न्यायालय भारतीय दंड संहिता की धारा 21 में परिभाषित लोक सेवक के दायरे पर विचार कर रहा था। ऐसा करना आवश्यक था, क्योंकि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 2 में लोक सेवक का अर्थ भारतीय दंड संहिता की धारा 21 के तहत परिभाषित किया गया हैं। उस मामले के लिए, बोर्ड का एक सदस्य या पार्षद स्वतः भारतीय दंड विधान की धारा 21 तहत परिभाषित लोक सेवक की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आ सकता

है, लेकिन इस का मतलब यह नहीं है कि उन्हें किसी अन्य अधिनियम के द्वारा लोक सेवक की श्रेणी में नहीं लाया जा सकता है। प्रस्तुत मामले में, नगरपालिका पार्षद या बोर्ड का सदस्य भारतीय दंड संहिता की धारा 21 के तहत परिभाषित लोक सेवक की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आता है, लेकिन राजस्थान नगरपालिका अधिनियम की धार 87 के द्वारा सृजित विधिक कल्पना की दृष्टि से वे सभी इस की परिभाषा के अन्तर्गत आते है।

21. यह एक स्वीकृत स्थिति है की उपरोक्त किसी भी निर्णय में इस न्यायालय ने राजस्थान नगरपालिका अधिनियम ,की धारा 87 के जैसा किसी भी प्रावधान पर विचार नहीं किया था और इसलिए उन निर्णयों का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता है कि एक नगर पार्षद किसी भी परिस्थिति में लोक सेवक नहीं माना जा सकता है। श्री अधियारू इंगित करते हुए कहते है कि राजस्थान नगरपालिका अधिनियम की धारा 87 के समान प्रावधान इन मामलों में विचाराधीन संबंधित अधिनियमों में मौजूद थे अतः यह माना जाना चाहिए की इस न्यायालय के द्वारा नगर निगम पार्षद लोक सेवक नहीं हैं यह अवधारित करने के क्रम ऐसे समान प्रावधानों पर निश्चित रूप से ध्यान दिया गया होगा। हालाँकि निष्पक्ष रूप से वह मानते है कि वास्तव में इन निर्णयों में ऐसे प्रावधान पर विचार नहीं किया गया है। हमारी राय है की किसी निर्णय की बाध्यकारी प्रकृति का पता लगाने के लिए उस में दिये गये तर्क को देखा जाना चाहिए। उन मामलों में दिया गया तर्क यह है कि नगर निगम पार्षद भारतीय दंड संहिता धारा 21 के अंतर्गत लोक सेवक नहीं है। लेकिन राजस्थान नगरपालिका अधिनियम की धारा 87, जैसा की उपर चर्चा किया गया है, पार्षद और बोर्ड के सदस्य को भारतीय दंड संहिता कि धारा 21 के अर्थ के अन्तर्गत एक लोक सेवक बनाती है। अतः पूर्व में उल्लिखित इस न्यायालय के सभी निर्णय स्पष्ट रूप से भिन्न हैं।

22. इतना ही नहीं, मौजूदा मामले में, हम भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 2(c) में परिभाषित अभिव्यक्ति लोक सेवक के अर्थ से संबद्ध हैं और इसलिए, इस न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णयों, जिसमें भारतीय दंड विधान की धारा 21 की व्याख्या कि गई हैं, जो धारा 2(c) के सार एवं तत्व काफी भिन्न हैं, निर्णयों का प्रभाव किसी भी प्रकार से प्रस्तुत वाद पर नहीं पड़ेगा जहाँ तक सुमित्रा कथानिया (सुप्रा) के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय का संबंध है उसमें राजस्थान नगरपालिका अधिनियम की धारा 87 पर विचार नहीं किया गया है। वास्तव में इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए कि नगरपालिका पार्षद लोक सेवक की परिभाषा में नहीं आयेगा, उनके द्वारा मुख्य रूप से रमेश बालकृष्ण कुलकर्णी के मामले में इस न्यायालय के द्वारा दिये गये निर्णय पर विश्वास किया गया हैं। हमने इस फैसले पर पूर्व के पैराग्राफों में बहुत संक्षिप्त विवरण देते हुए विचार किया हैं तथा इसे मामले में भिन्न पाया गया हैं कि उक्त निर्णय में वैधानिक प्रावधानों के वर्तमान

प्रारूप में विचार नहीं किया गया हैं। इस के अलावा उपरोक्त निर्णय विधि का कोई पूर्ण प्रस्थापना नहीं देता हैं की पार्षद को किसी भी परिस्थिति के रूप में लोक सेवक नहीं माना जा सकता हैं। विद्वान न्यायाधीश ने राजस्थान नगरपालिका अधिनियम 87 के साथ-साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 2(ब) का उल्लेख बिल्कुल भी नहीं किया हैं इसलिए सुमित्रा कथानिया के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय के द्वारा दिया गया फैसला विधि को सही रूप में निर्धारित नहीं करता हैं और इसलिए इसे खारिज किया जाता है।

23. चूकि मुकदमा लम्बे समय से लंबित है, इसलिए हम यह समीचीन मानते है कि मुकदमे के सुनवाई विद्वान न्यायाधीश शीघ्रता से निपटाने का प्रयास करें और किसी भी प्रकार से इस आदेश की प्रति प्राप्त होने के छः महीने से ज्यादा न हो।

24. परिणाम स्वरूप, हम इस अपील में कोई गुण नहीं पाते हैं और इसे तदनुसार खारिज किया जाता हैं।

आर. पी. अपील खारिज।

VINIT KUMAR SINGH, CIVIL JUDGE (JD)